International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 5; September 2018; Page No. 63-66

कबीर के काव्य की प्रगतिशील चेतना

डॉ० संतोष रामचंद्र आडे
संत रामदास महाविद्यालय, घनसावंगी, जालना, महारष्ट्र, भारत।

प्रस्तावना

संत कबीर मधुबन संत परंपरा में एक ऐसी बेजोड हस्ती है, जिनका समग्र व्यक्तित्व क्रांतिकारी, विद्रोही, संघर्षशील आक्रामक एवं प्रगतिशील रहा है। उनकी क्रांतिकारी व्यक्तित्व का सर्वोच्च प्रमुख तत्व प्रखर एवं गहरी संवेदनशीलता है। कबीर दास जैसे कालजयी पुरुष में ही ऐसी गहरी संवेदनशीलता संभव है वे स्वभाव से निर्भीक, निडर एवं स्पष्टवादी थे तो शरीर से स्वस्थ और सुडौल थे।

कबीरजी का आविर्भाव ऐसी परिस्थितियों में हुआ था कि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक सभी परिस्थितियों में अस्थिरता फैली हुई थी। राज्य में किसी एक की सत्ता नहीं थी धर्मा में बाहयाडंम्बर और कर्मकांड का बोलबाला था, समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था रूढ़ होने की कारण उच्च–नीच का भेदभाव माना जाता था, परकीय आक्रमणकारी मुसलमान धर्म के अधिन होने के कारण हिंदू–मुस्लिम संघर्ष फैला हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में कबीरदास ने अपने क्रांतिकारी विचारों से इन सभी क्षेत्रों में अपने विचारों को प्रस्तुत कर समाज में जागृति निर्माण कर सामान्यजनों को परिस्थिति से उभारने के लिए एक नूतन मार्ग दिखाया था। जिस पर कोई भी इंसान आसानी से चल सकता था। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "कबीर के व्यक्तित्व के निर्माण में जाति को महत्वपूर्ण मानते हैं और वे जिस जुग्गी जाति में उत्पन्न हुए थे वह तत्कालीन समय में ना हिंदू में गिनी जाती थी और ना मुसलमान में। इस कारण कबीर का व्यक्तित्व ना हिंदू ना मुसलमान का मानते हैं।"[1]

कबीर दास हिंदू, मुसलमान, भक्ति, योग आदि विचारधाराओं के मिलन बिंदुओं पर खड़े थे। यहॉ से देश सभी मार्ग के गुण–दोष देख सकते थे। इस कारण उनकी प्रगतिशील चेतना पर सिद्ध, नाथ, जैन, बौद्ध आदि के साथ हिंदू मुसलमानों की समस्त विचार धाराओं का प्रभाव पड़ा दिखाई देता है। प्रगतिशील कबीर की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक है, जिसका सामान्य अर्थ है। स्पंदनशीलता, उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होना। उन्होंने समाज साहित्य और धर्म सभी उद्धार किया। जीन विकृत तत्वों की प्रति उनकी प्रतिक्रिया जागृत हुई इनमें तीर्थाटन पूजा–विधि पारंपरिक मान्यता आदि तत्व प्रमुख है।

प्रगतिशील चेतना का स्वरूप विवेचन करते समय हमने देखा कि जैसे–जैसे इस प्रवृत्ति का विकास होता गया, उसने आपने कुछ मापदंडों का निर्धारण किया और आगे चलकर किसी भी वस्तु पदार्थ एवं साहित्य में प्रगतिशीलता को देखने के लिए यह मानदंडों को आधार रूप माना गया। इस संदर्भ में डॉ. पद्मा पाटील लिखती है–"कबीर के सामाजिक, धार्मिक चिंतन की प्रासंगिकता इस बात में है कि उन्होंने भारत की शोषित, पीड़ित जनता की मुक्ति के लिए संघर्ष किया। वे स्वंय में उस में सक्रिय रहे। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से इसकी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सिद्ध किया कि जो व्यक्ति खुद को जनता के साथ, उसके हित के साथ, अपने युग के वर्ग संघर्ष को संबंध करता है कोई श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करता है कबीर ने स्वयं को जनता से जोड़ा, उसके हित के लिए संघर्ष किया तथा योग इन समस्याओं को लेकर आवाज उठाया विद्रोह किया। उन्होंने परंपरागत मान्यताओं में परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया इसलिए कबीर प्रगतिशील ठहरते हैं।"[2]

मानवता विषयक दृष्टिकोण

कबीरजी कहते है मैं तो समाजसुधारक की भाँती किसी सामाजिक जीवन दर्शन का उपदेश देने आए थे और न किसी धर्म या जाति में एकता स्थापित करना उनका उद्देश्य था। किंतु जब उन्होंने अपने चारों और धर्म के नाम पर मानव–मानव के बीच वेदों की खाई देखी, छल–कपट का व्यवहार देखा तो वह अपने सुख को छोड़ मानव की पीड़ा को दूर करने में मनोयोगपूर्वक जुट गए। डॉ. बलराम शर्मा का मानना है कि, "कबीर ने खंडनात्मक शैली में जो कुछ कहा उसमें मानवता की ही पुकार है, किसी धर्म से देश या वैमनस्य नहीं। कुछ आलोचकों ने उनकी इस प्रखरता को दोष मानकर उन्हें केवल समाज सुधारक ठहराया है जो उनकी मूल भावना के साथ पूरी तरह से मेल नहीं खाता वस्तुतः कबीर तो मानव प्रेमी और मानवतावादी पुरुष थे।"[3]

मानवता का सुख का लक्ष्य क्या उद्देश शारीरिक सुख या भौतिक सुख संपत्ति की प्राप्ति ही नहीं होता और इसके अतिरिक्त कुछ और भी है, जो मानवीय संवेदना की ओर आकर्षित करने की क्षमता रखता है और वह है, सत्य और उसकी प्राप्ति। भौतिक सुख या संपत्ति के आनंद से मानव का चित कभी ना कभी उचट जाता है, परंतु सत्यम्, शिवम, सुंदरम के सानिध्य में और नैकट्य में रहकर मानव का मन कभी विकृत नहीं होता। मनुष्य की आत्मा की उन्नति तभी हो सकती, जब समस्त जीवो पर स्नेह है और जब सांसारिक वस्तुओं में आसकती ना हो। इसी कारण भारतीय दार्शनिकों ने बार–बार "आत्मवृत्त सर्वभूतेषुयः पश्यति सः पंडित" का उपदेश दिया है। भारतीय धर्म एवं संस्कृति में पहले से यह उपदेश दिया गया है कि दूसरों को आत्मावृत समझना चाहिए। हमारी चिंतन धारा सदैव इस बात पर जोर देती है कि दूसरों को आत्मावृत समझना चाहे दूसरो के कपटो, व्यथाओं और दुखों को अपनी अनुभूति बनाना चाहिए। इसी उदार दृष्टिकोण पर कबीर दास का मानवतावादी चिंतन आधारभूत है। उनकी प्रगति शीलता का मुख्य आधार यही मानवतावादी दृष्टि है।[4]

कबीर कहते हैं ऐसा जो मानवतावाद की प्राणशक्ति है। जब तक हम हिंसा में लगे रहेंगे तब तक एक दूसरे के प्रति जनता की भावना की स्थापना नहीं कर सकते। कबीर हीं भाई–भाई की भावना को उत्पन्न करके ऐसा व्रत का पालन करने का उपदेश दिया है। मुसलमान मौला को समझाते हुए यह कहते हैं।–

बकरी पाती खात है ताकि काढी खाल ।
जे न बकरी खाता है तिनकै कौन हवाल।।

और एक सखी में मुसलमानों को समझाते हुए वे कहते हैं

दिन भर रोजा रखत है रात हनत है गाय।
यह खून वह बंदगी कैसे खुसी खुदाय ।।

कबीर ने मानवता का आधारभूत किया मूल सिद्धांत समस्त प्राणियों को आत्मा से भी न समझना, समस्त जीवो में दया भाव का सम्मान रूप से प्रसार करना था। इस कारण वे मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव करना वास्तविकता का के साथ छिपाना मानते हैं।

जाती पाती पूछै नहीं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

मानवता के इतिहास में मानव समाज में कितने भी हिमायती उत्पन्न हुए, फैशन में कबीर का स्थान बड़ा उच्च और सराहनीय है। इसका कारण यह माना जाता है की कबीर निजी अनुभव को रद्हगम किया वे सब यथार्थ और वास्तविक है। इसलिए कभी हमें दया विश्व बंधुत्व और प्रेम की भावना पर विशेष बल दिया है कबीर ने मानवतावादी भावना से अनुप्रणित होकर कहा है।–

दया दिल में रखिए तो क्या निर्दयी होये।
साईं की सब जीव है। कीडि कुंजर सोय।।

कबीरजी ने अपने ईश्वर परमात्मा को तीनो लोक आकाश, पृथ्वी, पाताल में समान मानते हैं। कबीर की यह धारणा है कि उनका स्वामी तीनों लोकों का स्वामी है जो सब की आवश्यकताओं को पूरा करता है। सब का पेट भरता है। अतः किसी को चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस कारण उन्होंने मानव की आर्थिक सामाजिक तथा आध्यात्मिक सभी दशाओं को सुधारने की चेष्टा की। मानवता को वे सदैव ही श्रंखला उसे मुक्त देखना चाहते थे और भविष्य में एक स्वस्थ आशापूर्ण दृष्टिकोण के आकांक्षी थे। यही मानवतावादी दृष्टिकोण कबीर अपने कार्य में सर्वत्र ओत–प्रोत से भर देते हैं।

भारतीय वर्ण व्यवस्था का विरोध

तत्कालीन जाति जाति प्रथा और वर्णाश्रम व्यवस्था पर चोट करने का कार्य जीतना में कबीर ने किया है, उतना मध्य युग में हमने किसी ने भी नहीं कीया है। इसलिए दलित आंदोलन और दलित साहित्य के संदर्भ में कबीर पर काफी चर्चा होती है। "जाति प्रथा और छुआ–छूत की हीन भावना तब समाज में ऐसी फैली हुई थी कि जैसे कुष्ठ रोग की बीमारी हो। कबीर ने इसके विरुद्ध जबरदस्त मुहिम चलाई और उच्च. नीचता, जाति–प्रथाए मिटाने का संकल्प किया।"[5]

इस व्यवस्था में ब्राह्मण की अपराध के लिए दंड के प्रावधान नहीं थी। हिंदू समाज का नियमन करने वाला ब्राह्मण वर्ग जहां सैद्धांतिक दृष्टि से एकता तथा समानता का हमी थी, वही व्यवहार पक्ष में वह गुण क्रमानुसार न रहकर वस्तुतः जन्म अनुसार हो गई थी। किंतु आगे चलकर व्यवस्था लक्षित होकर चेतनाहिना बन गई। धीरे–धीरे चारों वर्णों के बीच ऊंच–नीच का व्यवहार विकसित होने लगा। श्रमजीवी उसे बुद्धिजीवियों का पद उच्च माना जाएगा और कर्म का आधार पर वर्ण–व्यवस्था पित्रक और परंपरा का अधिपत्य हो जाने से बौद्धिक महत्व से व्यक्ति भी उच्च वर्ण का मानकर आदर सम्मान का पात्र बन गया, जबकि श्रमजीवी अधिक–अधिक गलत ना होकर निम्न वर्ग का माने जाने लगा।

जातिभेद

कबीरजी का लालन–पालन ऐसी जाति या धर्म में हुआ था जिसमें निराकर भाव की उपासना प्रचलित थी। जातिभेद और ब्राह्मण की श्रेष्ठता की प्रति उसे जाति में कोई सहानुभूति नहीं रखी जाती थी। इस कारण कबीर दास वर्णाश्रम व्यवस्था को खूल कर विरोध करते है और सृष्टि में व्याप्त सभी प्राणियों को समान मानकर विचारधाराओं को अपनाकर, भेदभाव को मिटाने के लिए अद्वैत स्वरूप का उपदेश देते हैं। उन्होंने अपनी एक साखी में स्पष्ट कहा है सत्य निर्मिती एक ही योनि से हुई है और सब का निर्माता एक ही है उसे दूजा नहीं कहा जाना चाहिए। इतना ही नहीं जो उसे दूजा खून का कहते हैं उन्हें ही कबीरदास दूजा खून का मानते हैं। कबीर कहते है–.

ऊंचे कुल क्या जनमिया, जे करणी उँच्च ना होई।
सोवन कलश सुरै भरया साधू निघा सोई।।

उस समय कबीर ने देखा था कि उनकी कुल में जन्म लेने अथवा मिलने के कारण ब्राह्मण पुरोहितों का अहंकार बढ़ गया था। ऐसे ही एक ब्राह्मण पुरोहित को समाज के ऊपर विडंबन किया है जाति प्रथा पर टिप्पणी करते हैं की विधि इस व्यवस्था से जितनी चाहिए तभी हम एक होकर हमारा जीवन जी सकते हैं।

सामाजिक धार्मिक पाखंड का विरोध

कबीर का सामाजिक दृष्टिकण, मूल्य व्यवस्था, नैतिक आयाम, वर्ग चेतना से अनूप्रणित दृष्टि से कबीर के जीवन काल में भारतीय समाज मूल्य मुर्त की स्थिति में था। कबीर मनुष्य को समान मर्यादा में परिपूर्ण मानने वाले पक्ष में थे। उनकी सामाजिक दृष्टि में जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का कोई मूल्य नहीं था। ठीक कबीर और अगतिशील तत्वों का विरोध करने वाले तथा प्रगतिशील प्रवृत्तियों को लेकर चलने वाले। उन्होंने समग्र जीवन भर समाज में व्याप्त सामाजिक धार्मिक पाखंड का विरोध कर अपने प्रगतिशील व्यक्तित्व का परिचय दिया है। दिन विकृत तत्वों को उन्होंने विरोध किया उनमे बाह्याडबंर, धार्मिक अंधविश्वास, पुरोहितवाद, पूजा–विधि, मूर्ति–पूजा, श्राद्ध–विधि अन्य कर्मकांड सम्मिलित थे। परंपरागत आचारों का खंडन किया। जो केवल परंपरागत ही रह गए थे। इस कारण कबीर का समस्त काव्य प्रगतिशीलता का प्रतीक माना जाता है।

धार्मिक अंधविश्वास

कबीर केवल लोगों को कहने मात्र से कोई काम करने वाले नहीं थे। उन्होंने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अंधविश्वास के विरुद्ध लगा दिया था। श्री मुरली मनोहर प्रसाद सिंह लिखते हैं कि– "श्ले वे किसी भी सत्य को अपने विवेक बुद्धि की कसौटी पर परखने की पक्ष में थे। इसलिए उनका ज्ञान पारख ज्ञान था। अरे यह नहीं मानते थे कि वेद ईश्वर रचित है, बल्कि वे तर्क करते हैं कि ईश्वर से मनुष्य की कल्पना है मनुष्य ने उसकी रचना की है।[6]

कबीर ने धार्मिक अंधविश्वासों पर करारी चोट की है और अपने प्रगतिशील विचारों द्वारा सामान्य जनता के सामने आत्मविश्वास से भरा आनंद मार्ग रखा है। उनके विचारों के अनुसार जो पीर पैगंबर, काजी मुल्ला, रोजा–नमाज और पञिाम की भक्ति है उसको भी कबीरदास गलत मानते हैं। कबीर कहते हैं कि हमारे लिए राम और रहीम, केशव और करीम, राम और अल्लाह वही सत्य है।"

कबीर ने धर्म में व्याप्त अंधविश्वास का केवल विरोध ही नहीं किया बल्कि, साथ ही साथ सामान्य लोगों के सन्मार्ग पर चलने के लिए

एक नूतन मार्ग भी दिखाया, जिस पर चलकर लोग जीवन मरण के फेरे से मुक्त हो जाते हैं। कबीर ने धार्मिक अंधविश्वास में भूले भटके लोगों को अपनी प्रगतिशील विचारधारा द्वारा सन्मार्ग पर लाने की कोशिश की, उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों में व्याप्त अंधविश्वास ओं का कड़ा विरोध किया और धर्म अभिषेक सच्ची चेतना को जागृत किया। जिस चेतना के तहत लोगों ने अंधविश्वास को त्याग कर कबीर द्वारा प्रतिपादित प्रेमामूला भक्ति को स्वीकार किया उससे सामान्य मनुष्य भी भवसागर को पार कर सकता था।

पारंपरिक मान्यताओं का खंडन

कबीर ने सत्य अनुभव को सर्वसाधारण के सामने रखना शुरू किया उनका कहना था कि जिस अध्यात्म ज्ञान को पुस्तकों में लिखा बताया जाता है उसे तो सब लोग पढ़ कर ज्ञान समझ लेंगे। लेकिन जो ज्ञान पुस्तकों में नहीं है अर्थात वह अंतरात्मा जो सबके भीतर है, उसी को जाना नहीं और चिंतन करने की कोशिश क्यों न की जाए। यह संदेश अपने कबीर साहब आपने दौर में समाज को कर रहे थे। इससे स्पष्ट होता है कि पारंपरिक बनाम आधुनिकता का समर्थन करते थे। पौराणिक धर्म ग्रंथों में ही आध्यात्मिक ज्ञान होता है। इस पारंपरिक धरना का विरोध करते हुए अनुभूति को अधिक महत्व देते हैं। उन्होंने पारंपरिक मीट को क्यों नहीं स्वीकार इसके पीछे भी अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं इस संदर्भ में डॉ. बलदेव वंशी लिखते हैं "कबीर ने इतना जरूर किया है कि देश को स्वच्छ विद बनाकर स्थापित किया और कहा है कि–

वेद हमारा भेद हैए हम वेदन के माहि।
जाने वेद में हम बसैए वेदौ जानता नाहीं।।

अर्थात अपने हमारे लिए यह अध्ययन के मार्ग बंद कर दिए हैं। परंतु हम तो वेदों में रहते हैं। हमारा भी तुमसे मिलना जरूर है और अब हम जिस वेद में बसते हैं, उसे तथाकथित तुम्हारे वेद भी नहीं जानते। कबीर नहीं उस एकाधिकार और वर्चस्व को मिटाकर पुनःविद आत्मा, संवेदना की आधारशिला स्थापित कर दी है।"[7]

कबीर कहते हैं जब तक परमात्मा की भक्ति स्वार्थ के लिए की जाती है तब तक समर्थ सेवा पूजा व्यर्थ ही रहती है। जो इस बार हम ना रहे थे उसे कमर ही भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति में कबीर बाह्याडबंर को थोड़ी भी जगह नहीं देती। भक्ति नहीं एक वासना में व्यक्ति का भारी रूप उस वस्तु की समान है जिसे बाहर से तो घी, गुड, पूता हो लेकिन अंदर कूड़ा करकट भरा हुआ हो। उसी प्रकार सिर और बाल मुड़वा कर सन्यासी बन कर दुनिया में ढोंग करने से ही भक्ति नहीं होती।

कबीर के मतानुसार ईश्वर की भक्ति उस अग्नि ज्वाला के समान भयावह है। जो इसमें निरूसंकोच भाव से कूद पड़ते है यही संसार सागर को पार कर सकते हैं। जो भक्ति को केवल कौतूहल की वस्तु समझते हैं वही सपने में जलकर राख होते हैं। भक्ति मार्ग में मेरे लिए संकट उत्पन्न करने वाली की संख्या उतनी है जितनी रात्रि के समय में आकाश में तारे होते हैं। परंतु मैं उनकी परवाह नहीं करता यदि मेरे घर को सूली पर लटका दिया और शेर को खड़ा है पर टांग दिया जाए तो भी मैं भगवान राम का स्मरण नहीं छोडूंगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

कबीर निर्गुण कभी किसी वैज्ञानिक की बनती समाज की प्रयोगशाला में काम करते थे। ऐसा बहुत से विद्वानों का मानना है। इस संदर्भ में डॉ विमल मेहता लिखती है– "निर्गुण कवि अंधा अनुसरण के विश्वासी नहीं थे। रूढियों एवं अंधश्रद्धा के प्रति उन्हे घृना थी। श्रुति, कुरान और प्रामान्यवाद मैं इन्हें बिल्कुल आस्था नहीं थी। यह तो बहुत बड़े वैज्ञानिक थे जीवन की प्रयोगशाला में सत्य खंडों के प्रयोग करते थे। जो सत्य खंड उतरते थे उन्हें यह स्वीकार कर लेते थे और जो आडंबर का अनर्थ विशिष्ट होते थे, उनका खंडन कर डालते थे । इसके लिए उन्होने केवल प्रत्यक्ष अनुभूति का आश्रय ग्रहण किया था।[8]

"कबीरदास ने अपने समस्त कार्य में जो विचार व्यक्त किए हैं यह सभी वैज्ञानिक अवधारणा की कसौटी पर शत–प्रतिशत खरे उतरते हैं। जिस प्रकार लोहा लोहे को अग्नि में पिघला कर शुद्ध करता है उसी प्रकार सतगुरु साधना की कसौटी पर कसकर शिष्य को कंचनवत बना लेता है।"[9] गुरु किस प्रकार साधना की कसौटी पर कसकर शिक्षा देता है इस बात को स्पष्ट करने के लिए कबीर लोहार का उदाहरण देते हैं जो उनके वैज्ञानिक अवधारणा का परिचायक है। जीवन की अनित्य का का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं पानी से बर्फ बनती है और बर्फ गर्ल कर फिर पानी बन जाता है उसी प्रकार मूल प्रकृति से यह शरीर बनता है और पुण्य मूल प्रकृति में ही विलीन हो जाता है।

कबीरदास की कलम से लिखी बातों की अपेक्षा आंखों देखी बातों पर अधिक विश्वास करने वाले थे इस कारण साक्षात्कार के अभाव में परमात्मा के संदर्भ में कुछ कहना भी धोखा देने के बराबर मानते थे। उनका यह विचार है जब ब्रह्मा तक पहुंच जाएंगे तब उस स्थिति में पहुंचने के बाद उसके विषय में कुछ बता सकेंगे। अभी तो उसमें हमारी नया मझधार में है। इस दिशा में उसके बारे में कुछ कहकर लोगों को धोखा क्यों दे। इससे स्पष्ट होता है कि कबीर कागज की लिखी बातों की अपेक्षा आँखिन देखी बातों पर अधिक विश्वास रखने वाले थे, तथा बाह्याडंबर तथा धार्मिक अंधविश्वास को दुत्कार कर सत्य में विश्वास करने वाले थे जो सत्य वैज्ञानिक अवधारणा का मूलभूत आधार स्तंभ है।

कबीर की अपनी अवधारणा है जिसे हम वैज्ञानिक अवधारणा मान सकते हैं उनकी अवधारणा के अनुसार जैतीपुर मकर राशि रहित होकर पक्ष विपक्ष एवमं मत–मतांतर तथा तेरे–मेरे की भावना से बड़े होकर भगवान का भजन करता है, वही ज्ञानी साधु है तथा उसी व्यक्ति को साधु और सच्चाई होगी समझना चाहिए । इसे ही तो ज्ञान का प्रमुख आधार नंबर माना जाता है। क्योंकि विज्ञान में पूर्वाग्रह और अंधश्रद्धा को तनिक भी जगह नहीं मिलती और कभी दोनों से परे मनुष्य को सच्चाई होगी तथा ज्ञानी मानते हैं।

कबीरजी अपने वर्तमान के प्रति पूर्णतः सशक्त चेतना वाले व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन और जगत को खुली आंखों से देखा था। जिस प्रकार आधुनिक लड़की अपने वर्तमान के प्रति चिंतित होता है, उसी प्रकार कभी भी अपनी वर्तमान की परिस्थिति से दुखी निराश या चिंतित दिखाई देते हैं। वर्तमान की मूल्य मुढ़ता व्यक्ति की स्वार्थ से बाहर न जाने की क्षमता लोगों के वर्तमान प्रशासन को लगाव के प्रति और ज्ञान और मनुष्य के प्रति मनुष्य की निस्प्रहत्व उदासीनता को उन्होंने समाज के व्यापक संबंधों से लेकर उसमें अपने निजी संबंधों तक बड़ी पीड़ा के साथ अनुभव किया था। इस कारण ही हमें आज ही आधुनिक लगते हैं।

निष्कर्ष

कहा जाता है कि कबीर तत्कालीन परिस्थितियों में जो विचार व्यक्त करते थे कि आज भी उतनी ही प्रसांगिक लगते हैं और शायद कल भी उतने ही प्रासंगिक होंगे। क्योंकि कबीर के विचार कबीर की कालजयी है। युगो का बंधन उन्हें बांध नहीं सकता। इस प्रकार समस्त कार्य में प्रासंगिक प्रगतिशील चेतना का प्रचार एवं प्रसार कर

कबीरदास ने प्रगतिशील चेतना के बीज बोए है। इसी कारण उनको प्रगतिशील का जनक माना जाता है। क्योंकि वही के विचारों की सीढ़ी पर आज के प्रगतिशील साहित्य की इमारत खड़ी है ।

कबीर ने व्यक्ति समाज के जीन सात्विक गुणों की परिकल्पना की है, आज भी उतने ही आवश्यक है। आज की अंतर्जाल के युग में जब हम 21वीं सदी में पदार्पण कर रहे हैं, तभी मानव के इन गुणों को मापदंड परिवर्तित नहीं हुई है इनकी आज भी सबसे अधिक आवश्यकता है जो मानव को मानवीय धरातल पर खड़ा करने में सहायक होते हैं। कबीर के अनुसार मानव में कुछ गुण होने चाहिए। आज संसार में इतनी विभिन्नता और विषमता है कि व्यक्ति उनमें कुछ अच्छा बुरा पहचानने में असमर्थ है। उसके लिए उसमें नीरक्षर का भेद करने वाले गुण विद्यमान होने चाहिए। जिसके पास भी यह गुण होंगे उसे ही आज के आधुनिक युग में बुद्धिमान कहा जाता है। जो इन गुणों के आधार पर सही क्या है तथा गलत क्या है इसका मूल्यांकन कर सकता है ऐसे व्यक्ति की मांग आज वर्तमान में कबीर के अनुसार हमें दिखाई देती है।

प्रगतिशील चेतना आनंद गतिरोध के बावजूद किसी न किसी अंश में साहित्य की हर विधा में विद्यमान रहती है इसी कारण किसी भी कार्य रचनाकार वस्तु या पदार्थ को प्रगतिशील होने के लिए निरंतर गतिशील रहना अवश्य होता है इस दृष्टि से कबीरदास में यह चेतना निरंतर रूप से प्रवाहमान रही है। निरंतर गतिशील काव्य की प्रधान प्रवृत्ति है। मानव विषयक दृष्टिकोण में भारतीय वर्ण व्यवस्था का विरोध करते समय सामाजिक धार्मिक पाखंड का विरोध करते समय पारंपरिक मान्यताओं का खंडन करते समय भक्ति विषयक, स्त्री विषयक, पर्यावरण विषयक, अर्थनीति विषय, विज्ञान विषयक विचार अभिव्यक्त करते समय उन्होंने इस प्रगतिशील चेतना का परिचय दिया है। उन्होंने शोषित, पीड़ित जनता के साथ संघर्ष किया है जनसाधारण के हित के संबंध में उनके साथ अपने संबंध जोड़े है, योग इन समस्याओं की यथार्थ व्यक्ति अपने कार्य में की है परंपरागत मान्यताओं के परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस कारण उन्हें प्रगतिशील माना जाता है।

संदर्भ

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. 120
2. श्री ए. एफ. निरलकट्टी, दक्षिण भारत, त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल–जून 1999 पृ. 11
3. डॉ. बलराज शर्मा, मध्यकालीन काव्य धाराएँ, एवं प्रतिनिधि कवि पृ. 60
4. डॉ. जगदीश्वर प्रसाद, कबीर की प्रगतिशील चेतना, पृ. 127
5. संत देवीदास आचार्य, जीन सब ठौर, पृ. 173
6. डॉ. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, इंद्रप्रस्था मराठी मासिक, अप्रैल–जून 2000 पृ. 115
7. डॉ. बलदेव वंशी, पूरा कबीर, पृ. 12–13
8. डॉ. विमल मेहता, निर्गुण कवियों के आदर्श समाज का स्वरूप, पृ. 165
9. डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, कबीर ग्रंथावली गुरुदेव को अंग, संपादित पृ. 19